श्रंगार रस और भक्ति एक विवेचना

Mamta

Research Scholar, Singhania University, Pacheri Bari, Jhunjhunu, Rajasthan

----------♦----------

परिचय

भरतमुनि (2-3 शती ई.) ने काव्य के आवश्यक तत्व के रूप में रस की प्रतिष्ठा करते हुए श्रृंगार, हास्य, रौद्र, करुण, वीर, अद्भुत, बीभत्स तथा भयानक नाम से उसके आठ भेदों का स्पष्ट उल्लेख किया है तथा कतिपय पंक्तियों के आधार पर विद्वानों की कल्पना है कि उन्होंने शांत नामक नवें रस को भी स्वीकृति दी है। इन्हीं नौ रसों की संज्ञा है नवरस। विभावानुभाव-संचारीभाव के संयोग से इन रसों की निष्पत्ति होती है। प्रत्येक रस का स्थायीभाव अलग-अलग निश्चित है। उसी की विभावादि संयोग से परिपूर्ण होनेवाली निर्विघ्न-प्रतीति-ग्राह्य अवस्था रस कहलाती है। श्रृंगार का स्थायी रति, हास्य का हास, रौद्र का क्रोध, करुण का शोक, वीर का उत्साह, अद्भुत का विस्मय, बीभत्स का जुगुप्सा, भयानक का भय तथा शांत का स्थायी शम या निर्वेद कहलाता है। भरत ने आठ रसों के देवता क्रमश: विष्णु, प्रमथ, रुद्र, यमराज, इंद्र, ब्रह्मा, महाकाल तथा कालदेव को माना है। शांत रस के देवता नारायण, और उसका वर्ण कुंदेटु बताया जाता है। प्रथम आठ रसों के क्रमश: श्याम, सित, रक्त, कपोत, गौर, पीत, नील तथा कृष्ण वर्ण माने गए हैं।

रस की उत्पत्ति

भरत ने प्रथम आठ रसों में श्रृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स को प्रधान मानकर क्रमश: हास्य, करुण, अद्भुत तथा भयानक रस की उत्पत्ति मानी है। श्रृंगार की अनुकृति से हास्य, रौद्र तथा वीर कर्म के परिणामस्वरूप करुण तथा अद्भुत एवं वीभत्स दर्शन से भयानक उत्पन्न होता है। अनुकृति का अर्थ, अभिनवगुप्त (11वीं शती) के शब्दों में आभास है, अत: किसी भी रस का आभास हास्य का उत्पादक हो सकता है। विकृत वेशालंकारादि भी हास्योत्पादक होते हैं। रौद्र का कार्य विनाश होता है, अत: उससे करुण की तथा वीरकर्म का कर्ता प्राय: अशक्य कार्यों को भी करते देखा जाता है, अत: उससे अद्भुत की उत्पत्ति स्वाभाविक लगती है। इसी प्रकार बीभत्सदर्शन से भयानक की उत्पत्ति भी संभव है। अकेले स्मशानादि का दर्शन भयोत्पादक होता है। तथापि यह उत्पत्ति सिद्धांत आत्यंतिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परपक्ष का रौद्र या वीर रस स्वपक्ष के लिए भयानक की सृष्टि भी कर सकता है और बीभत्सदर्शन से शांत की उत्पत्ति भी संभव है। रौद्र से भयानक, श्रृंगार से अद्भुत और वीर तथा भयानक से करुण की उत्पत्ति भी संभव है। वस्तुत: भरत का अभिमत स्पष्ट नहीं है। उनके पश्चात् धनंजय (10वीं शती) ने चित्त की विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप नामक चार अवस्थाएँ मानकर श्रृंगार तथा हास्य को विकास, वीर तथा अद्भुत को विस्तार, बीभत्स तथा भयानक को विक्षोभ और रौद्र तथा करुण को विक्षेपावस्था से संबंधित माना है। किंतु जो विद्वान् केवल द्रुति, विस्तार तथा विकास नामक तीन ही अवस्थाएँ मानते हैं उनका इस वर्गीकरण से समाधान न होगा। इसी प्रकार यदि श्रृंगार में चित्त की द्रवित स्थिति, हास्य तथा अद्भुत में उसका विस्तार, वीर तथा रौद्र में उसकी दीप्ति तथा बीभत्स और भयानक में उसका संकोच मान लें तो भी भरत का क्रम ठीक नहीं बैठता। एक स्थिति के साथ दूसरी स्थिति की उपस्थिति भी असंभव नहीं है। अद्भुत और वीर में विस्तार के साथ दीप्ति तथा करुण में द्रुति और संकोच दोनों हैं। फिर भी भरतकृत संबंध स्थापन से इतना संकेत अवश्य मिलता है कि कथित रसों में परस्पर उपकारकर्ता विद्यमान है और वे एक दूसरे के मित्र तथा सहचारी हैं।

रसों का परस्पर विरोध

मित्रता के समान ही इन रसों की प्रयोगस्थिति के अनुसार इनके विरोध की कल्पना भी की गई है। किस रसविशेष के साथ किन अन्य रसों का तुरंत वर्णन आस्वाद में बाधक होगा, यह विरोधभावना इसी विचार पर आधारित है। करुण, बीभत्स, रौद्र, वीर और भयानक से श्रृंगार का; भयानक और करुण से हास्य का;

हास्य और श्रृंगार से करुण का; हास्य, श्रृंगार और भयानक से रौद्र का; श्रृंगार, वीर, रौद्र, हास्य और शात से भयानक का; भयानक और शांत से वीर का; वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य और भयानक से शांत का विरोध माना जाता है। यह विरोध आश्रय ऐक्य, आलंबन ऐक्य अथवा नैरंतर्य के कारण उपस्थित होता है। प्रबंध काव्य में ही इस विरोध की संभावना रहती है। मुक्तक में प्रसंग की छंद के साथ ही समाप्ति हो जाने से इसका भय नहीं रहता है। लेखक को विरोधी रसों का आश्रय तथा आलंबनों को पृथक-पृथक रखकर अथवा दो विरोधी रसों के बीच दोनों के मित्र रस को उपस्थित करके या प्रधान रस की अपेक्षा अंगरस का संचारीवत् उपस्थित करके इस विरोध से उत्पन्न आस्वाद-व्याघात को उपस्थित होने से बचा लेना **रस की**

आस्वादनीयता

रस की आस्वादनीयता का विचार करते हुए उसे ब्रह्मानंद सहोदर, स्वप्रकाशानंद, विलक्षण आदि बताया जाता है और इस आधार पर सभी रसों को आनंदात्मक माना गया है। भट्टनायक (10वीं शती ई.) ने सत्वोद्रैक के कारण ममत्व-परत्व-हीन दशा, अभिनवगुप्त (11वीं शती ई.) ने निर्विघ्न प्रतीति तथा आनंदवर्धन (9 श. उत्तर) ने करुण में माधुर्य तथा आर्द्रता की अवस्थित बताते हुए श्रृंगार, विप्रलंभ तथा करुण को उत्तरोत्तर प्रकर्षमय बताकर सभी रसों की आनंदस्वरूपता की ओर ही संकेत किया है। किंतु अनुकूलवेदनीयता तथा प्रतिकूलवेदनीयता के आधार पर भावों का विवेचन करके रुद्रभट्ट (9 से 11वीं शती ई. बीच) रामचंद्र गुणचंद्र (12वीं श.ई.), हरिपाल, तथा धनंजय ने और हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने रसों का सुखात्मक तथा दु:खात्मक अनुभूतिवाला माना है। अभिनवगुप्त ने इन सबसे पहले ही "अभिनवभारती" में "सुखदु:खस्वभावों रस:" सिद्धात को प्रस्तुत कर दिया था। सुखात्मक रसों में श्रृंगार, वीर, हास्य, अद्भुत तथा शांत की और दु:खात्मक में करुण, रौद्र, बीभत्स तथा भयानक की गणना की गई। "पानकरस" का उदाहरण देकर जैसे यह सिद्ध किया गया कि गुड़ मिरिच आदि को मिश्रित करके बनाए जानेवाले पानक रस में अलग-अलग वस्तुओं का खट्टा मीठापन न मालूम होकर एक विचित्र प्रकार का आस्वाद मिलता है, उसी प्रकार यह भी कहा गया कि उस वैचित्र्य में भी आनुपातिक ढंग से कभी खट्टा, कभी तिक्त और इसी प्रकार अन्य प्रकार का स्वाद आ ही जाता है। मधुसूदन सरस्वती का कथन है कि रज अथवा तम की अपेक्षा सत्व को प्रधान मान लेने पर भी यह तो मानना ही चाहिए कि अंशत: उनका भी आस्वाद बना रहता है। आचार्य शुक्ल का मत है कि हमें अनुभूति तो वर्णित भाव की ही होती है और भाव सुखात्मक दु:खात्मक आदि प्रकार के हैं, अतएव रस भी दोनों प्रकार का होगा। दूसरी ओर रसों को आनंदात्मक मानने के पक्षपाती सहृदयों को ही इसका प्रमण मानते हैं और तर्क का सहारा लेते हैं कि दु:खदायी वस्तु भी यदि अपनी प्रिय है तो सुखदायी ही प्रतीत होती है। जैसे, रतिकेलि के समय स्त्री का नखक्षतादि से यों तो शरीर पीड़ा ही अनुभव होती है, किंतु उस समय वह उसे सुख ही मानती है। भोज (11वीं शती ई.) तथा विश्वनाथ (14वीं शती ई.) की इस धारणा के अतिरिक्त स्वयं मधुसूदन सरस्वती रसों को लौकिक भावों की अनुभूति से भिन्न और विलक्षण मानकर इनकी आनंदात्मकता का समर्थन करते है और अभिनवगुप्त वीतविघ्नप्रतीत वताकर इस धारणा को स्पष्ट करते हैं कि उसी भाव का अनुभव भी यदि बिना विचलित हुए और किसी बाहरी अथवा अंतरोद्भूत अंतराय के बिना किया जाता है तो वह सह्य होने के कारण आनंदात्मक ही कहलाता है। यदि दु:खात्मक ही मानें तो फिर श्रृंगार के विप्रलंभ भेद को भी दु:खात्मक ही मानें तो फिर श्रृंगार के विप्रलंभ भेद को भी दु:खात्मक ही क्यों न माना जाए? इस प्रकार के अनेक तर्क देकर रसों की आनंदरूपता सिद्ध की जाती है। अंग्रेजी में ट्रैजेडी से मिलनेवाले आनंद का भी अनेक प्रकार से समाधान किया गया है और मराठी लेखकों ने भी रसों की आनंदरूपता के संबंध में पर्याप्त भिन्न धारणाएँ प्रस्तुत की हैं।

रसों का राजा कौन है?

प्राय: रसों के विभिन्न नामों की औपाधिक या औपचारिक सत्ता मानकर पारमार्थिक रूप में रस को एक ही मानने की धारणा प्रचलित रही है। भारत ने "न हि रसादृते कश्चिदप्यर्थ : प्रवर्तत" पंक्ति में "रस" शब्द का एक वचन में प्रयोग किया है और अभिनवगुप्त ने उपरिलिखित धारणा व्यक्त की है। भोज ने श्रृंगार को ही एकमात्र रस मानकर उसकी सर्वथैव भिन्न व्याख्या की है, विश्वनाथ की अनुसार नारायण पंडित चमत्कारकारी अद्भुत को ही एकमात्र रस मानते हैं, क्योंकि चमत्कार ही रसरूप होता है। भवभूति (8वीं शती ई.) ने करुण को ही एकमात्र रस मानकर उसी से सबकी उत्पत्ति बताई है और भरत के "स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शांताद्भाव: प्रवर्तते, पुनर्निमित्तापाये च शांत एवोपलीयते" - (नाट्यशास्त्र 6/108) वक्तव्य के आधार पर शांत को ही एकमात्र रस माना जा सकता है। इसी प्रकार उत्साह तथा विस्मय की सर्वरससंचारी स्थिति के आधार पर उन्हें भी अन्य सब रसों के मूल

में माना जा सकता है। रस आस्वाद और आनंद के रूप में एक अखंड अनुभूति मात्र हैं, यह एक पक्ष है और एक ही रस से अन्य रसों का उद्भव हुआ है यह दूसरा पक्ष है।

रसाप्राधान्य के विचार में रसराजता की समस्या उत्पन्न की है। भरत समस्त शुचि, उज्वल, मेध्य और दलनीय को श्रृंगार मानते हैं, "अग्निपुराण" (11वीं शती) शृंगार को ही एकमात्र रस बताकर अन्य सबको उसी के भेद मानता है, भोज श्रृंगार को ही मूल और एकमात्र रस मानते हैं, परंतु उपलब्ध लिखित प्रमाण के आधार पर "रसराज" शब्द का प्रयोग "उज्ज्वलनीलमणि" में भक्तिरस के लिए ही दिखाई देता है। हिंदी में केशवदास (16वीं शती ई.) श्रृंगार को रसनायक और देव कवि (18वीं शती ई.) सब रसों का मूल मानते हैं। "रसराज" संज्ञा का श्रृंगार के लिए प्रयोग मतिराम (18वीं शती ई.) द्वारा ही किया गया मिलता है। दूसरी ओर बनारसीदास (17वीं शती ई.) "समयसार" नाटक में "नवमों सांत रसनि को नायक" की घोषणा करते हैं। रसराजता की स्वीकृति व्यापकता, उत्कट आस्वाद्यता, अन्य रसों को अंतर्भूत करने की क्षमता सभी संचारियों तथा सात्विकों को अंत:सात् करने की शक्ति सर्वप्राणिसुलभत्व तथा शीघ्रग्राह्यता आदि पर निर्भर है। ये सभी बातें जितनी अधिक और प्रबल श्रृंगार में पाई जाती हैं, उतनी अन्य रसों में नहीं। अत: रसराज वही कहलाता है।

श्रृंगार रस

विचारको ने रौद्र तथा करुण को छोड़कर शेष रसों का भी वर्णन किया है। इनमें सबसे विस्तृत वर्णन श्रृंगार का ही ठहरता है। श्रृंगार मुख्यत: संयोग तथा विप्रलंभ या वियोग के नाम से दो भागों में विभाजित किया जाता है, किंतु धनंजय आदि कुछ विद्वान् विप्रलंभ के पूर्वानुराग भेद को संयोग-विप्रलंभ-विरहित पूर्वावस्था मानकर अयोग की संज्ञा देते हैं तथा शेष विप्रयोग तथा संभोग नाम से दो भेद और करते हैं। संयोग की अनेक परिस्थितियों के आधार पर उसे अगणेय मानकर उसे केवल आश्रय भेद से नायकारब्ध, नायिकारब्ध अथवा उभयारब्ध, प्रकाशन के विचार से प्रच्छन्न तथा प्रकाश या स्पष्ट और गुप्त तथा प्रकाशनप्रकार के विचार से संक्षिप्त, संकीर्ण, संपन्नतर तथा समृद्धिमान नामक भेद किए जाते हैं तथा विप्रलंभ के पूर्वानुराग या अभिलाषहेतुक, मान या ईश्र्याहेतुक, प्रवास, विरह तथा करुण प्रिलंभ नामक भेद किए गए हैं। "काव्यप्रकाश" का विरहहेतुक नया है और शापहेतुक भेद प्रवास के ही अंतर्गत गृहीत हो सकता है, "साहित्यदर्पण" में करुण विप्रलंभ की कल्पना की गई है। पूर्वानुराग कारण की दृष्टि से गुणश्रवण, प्रत्यक्षदर्शन, चित्रदर्शन, स्वप्न तथा इंद्रजाल-दर्शन-जन्य एवं राग स्थिरता और चमक के आधार पर नीली, कुसुंभ तथा मंजिष्ठा नामक भेदों में बाँटा जाता है। "अलंकारकौस्तुभ" में शीघ्र नष्ट होनेवाले तथा शोभित न होनेवाले राग को "हारिद्र" नाम से चौथा बताया है, जिसे उनका टीकाकार "श्यामाराग" भी कहता है। पूर्वानुराग का दश कामदशाएँ - अभिलाष, चिंता, अनुस्मृति, गुणकीर्तन, उद्वेग, विलाप, व्याधि, जड़ता तथा मरण (या अप्रदश्र्य होने के कारण उसके स्थान पर मूर्च्छा) - मानी गई हैं, जिनके स्थान पर कहीं अपने तथा कहीं दूसरे के मत के रूप में विष्णुधर्मोत्तरपुराण, दशरूपक की अवलोक टीका, साहित्यदर्पण, प्रतापरुद्रीय तथा सरस्वतीकंठाभरण तथा काव्यदर्पण में किंचित् परिवर्तन के साथ चक्षुप्रीति, मन:संग, स्मरण, निद्राभंग, तनुता, व्यावृत्ति, लज्जानाश, उन्माद, मूर्च्छा तथा मरण का उल्लेख किया गया है। शारदातनय (13वीं शती) ने इच्छा तथा उत्कंठा को जोड़कर तथा विद्यानाथ (14वीं शती पूर्वार्ध) ने स्मरण के स्थान पर संकल्प लाकर और प्रलाप तथा संज्वर को बढ़ाकर इनकी संख्या 12 मानी है। यह युक्तियुक्त नहीं है और इनका अंतर्भाव हो सकता है। मान-विप्रलंभ प्रणय तथा ईर्ष्या के विचार से दो प्रकार का तथा मान की स्थिरता तथा अपराध की गंभीरता के विचार से लघु, मध्यम तथा गुरु नाम से तीन प्रकार का, प्रवासविप्रलंभ कार्यज, शापज, सँभ्रमज नाम से तीन प्रकार का और कार्यज के यस्यत्प्रवास या भविष्यत् गच्छत्प्रवास या वर्तमान तथा गतप्रवास या भविष्यत् गच्छत्प्रवास या वर्तमान तथा गतप्रवास या भूतप्रवास, शापज के तादूप्य तथा वैरूप्य, तथा संभ्रमज के उत्पात, वात, दिव्य, मानुष तथा परचक्रादि भेद के कारण कई प्रकार का होता है। विरह गुरुजनादि की समीपता के कारण पास रहकर भी नायिका तथा नायक के संयोग के होने का तथा करुण विप्रलंभ मृत्यु के अनंतर भी पुनर्जीवन द्वारा मिलन की आशा बनी रहनेवाले वियोग को कहते हैं। श्रृंगार रस के अंतर्गत नायिकालंकार, ऋतु तथा प्रकृति का भी वर्णन किया जाता है। एक उदाहर है-

राम को रूप निहारति जानकी कन्गन के नग की परछाही याते सबे सुख भूलि गाइ कर तेकि रही पल तारति नाहि